© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

संस्कृत वाड्.मय में लोक–कल्याण की अवधारणा : एक सिंहावलोकन

न्जजंत च्तंकमीसंस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद।

संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा है यह चिर–नूतन भाषा हैं क्योंकि सर्वप्राचीन होने पर भी आज किसी भी भाषा से अधिक युवती हैं। भारतवर्ष का अधिकांश साहित्य संस्कृत भाषा में ही निबद्ध है। संस्कृत–साहित्य भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत है। संस्कृत–साहित्य सुखान्त है। इसमें मानव–कल्याण की भावना कूट–कूट कर भरी है। संस्कृत–साहित्य 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'[1] तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्'[2] का डिम–डिम घोष करते हुए समाज–कल्याण की अवधारणा को स्पष्ट करता है।

भारतवर्ष में सांसारिक जीवन के उपकरणों को सौलभ्य होने के कारण भारतीय समाज जीवन संग्राम के विकट संघर्ष से अपने को अलग रखकर आनन्द की अनुभूति की उपलब्धि को अपना लक्ष्य मानता है। इसीलिए संस्कृत वाड्.मय जीवन की विषम परिस्थितियों के भीतर से आनन्द की खोज में सदा संलग्न रहता है। संस्कृत वाड्.मय भारत देष का नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के जनमानस कल्याण के लिए संकल्पित है। भारतीय साहित्य के अनुसार समस्त प्राणियों में एक ही आत्मा के विराजमान होने के कारण सब में समानता मानी गयी है। एतदर्थ मानवमात्र को परस्पर भाई–बन्धु के समान रहने की षिक्षा दी गयी है, साथ ही इस शिक्षा को जीवन में प्रायोगिक एवं जीवन रूप देने के लिए अहिंसा, करूणा, प्रेम, समता, सहानुभूति, सहिष्णुता, सहृदयता, सहयोग, समन्वय आदि सत्कर्तव्यों के पालन करने पर जोर दिया गया है।

साहित्य वह शक्तिशाली तत्व है जो अपने प्रयास से समाज को परिवर्तित करने की शक्ति रखता है। यह परिवर्तन कल्याणप्रद होता है, क्योंकि हितेन सहितम् साहित्यम् अर्थात् साहित्य सहज रूप में समाज कल्याण के प्रति सचेष्ट होता है। समाज भी ऐसा क्षेत्र है जो अपने क्रियाकलापों से विचारकों और मनीषियों को अपने विषय में खोजने के लिए विवष कर देता है और उसकी ध्वनि एवं रूप साहित्य में देखने को मिलते है। साहित्य और समाज का सम्बन्ध स्पष्ट है। समाज शब्द सम पूर्वक अज् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर निष्पत्र होता है।[3] यह शब्द पशु–भिन्न में अमरकोष द्वारा प्रयुक्त किया गया है।[4] समाज शब्द का अर्थ मानव समूल लिया गया है। संस्कृत–साहित्य में उसी व्यक्ति को सामाजिक के रूप में स्वीकार किया गया है जो अपनी अविकृत क्रियाओं द्वारा समाज की रक्षा करने में समर्थ है।[5]

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसे समूह में रहना अभीष्ट है। मनुष्य को अपनी आवष्यकताओं की पूर्ति के लिए एक दूसरे का सहयोग चाहिए। निरन्तर साथ–साथ रहते हुए अन्तः क्रियाओं एवं अन्तःसम्बन्धों की स्थापना हुई। इन्हीं कारणों से समाज का जन्म हुआ।

मैकाइवर और पेज लिखते हैं, "The Various mides of Together comprise the complen pattern of social structure"

IJSRST1736201 | Received : 09 July 2017 | Accepted : 25 July 2017 | July-August-2017 [(3) 6 : 798-802]

साहित्य की सर्जना मानव के द्वारा की जाती है। अतः जिस प्रकार मानव परस्पर एक दूसरे के कल्याण के प्रति चेष्ट है, उसी प्रकार साहित्य भी समाज का कल्याण करता है।

संस्कृत–साहित्य की यह एक अनोखी विषेशता है कि यह मानवमात्र के कल्याण की भावना को अग्रसर करता है। वेद की शुरूआत ही समस्त मानवों के कल्याण के संकल्प के साथ होती है, 'अग्निमीळे पुरोहितम्[7] इसका भावार्थ यह है कि समस्त मानवों का कल्याण करने वाले अग्नि की स्तुति करता हूँ। वैदिक ऋषि विश्व समाज कल्याण के लिए सुमति और सद्भावना की प्रार्थना करता है, ''यांष्चय पष्यामि यांष्च न। तेषु मा सुमर्ति कृधि।''[8]

वेद में समाज कल्याण का आदर्श संज्ञान सूक्त जिस सौमनस्य सूक्त भी कहते है, जो ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त है सामाजिक सद्भाव का उत्प्रेरक है तथा श्रेष्ठ मानव धर्म सिखलाता है। ऋग्वेद का स्वस्तिवाचन जो सम्पूर्ण विष्व कल्याण की बात करता है, सबका मंगल चाहता है 'आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विष्वतो।[9] आत्यन्तिक रूप से वेद समस्त मानवों के कल्याण का यह उद्घोष करता है, ''सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानामुपासते।''[10]

वैदिक वाड्.मय का अन्तिम चरण उपनिषद् है। उपनिषद् के व्युत्पत्ति में सद् धातु के विशरण, गति और अवसादन अर्थों से स्पष्टता मानव कल्याण की भावना दृष्टिगोचर होती है। उपनिषद् में निहित अद्वैतवाद मानव–मानव में ही नहीं अपितु प्राणिमात्र में एक ही तत्व के दर्षन कराता है। इसकी अनुभूति से कोई अपना पराया नही रहता। जब इस तरह एकत्व की स्थिति आ जाती है तो इस स्थिति को प्राप्त करने वाले के लिए कोई मोह, कोई शक नही करता। वह किसी से घृणा नहीं करता, सबको अपने जैसा तथा अपनी आत्मा को सब प्राणियों में देखता है, ''यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपष्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजिगुप्सते।''[11]

आधुनिक युग में जो भेदभाव और शत्रुता की प्रवृत्तियॉ बढ़ रही है उसको उपनिषदों का यह सिद्धान्त समाप्त कर सकता है। वास्तव में हिंसा तथा आतंक से भरे विष्व में शान्ति प्राप्ति की इच्छा जन्म ले रही है।

उपनिषदों में ब्रह्य–ज्ञान के अन्यतम् साधन के रूप में प्रणव की उपासना अथवा ओम की उपासना बतायी गयी है, यह ओम ब्रह्य का सूक्ष्म प्रतीक है। इस प्रकार ओम शब्द ब्रह्य है।

आधुनिक वैज्ञानिक भी शब्द की शक्ति को स्वीकार करते हैं। प्रयोग द्वारा सिद्ध किया गया है कि इस ध्वनि पर ध्यान एकाग्र करने से मन शीघ्र शान्त हो जात है। इस प्रकार उपनिषदों में समाज कल्याण की भावना पर विषेष बल दिया गया है। समस्त विष्व उपनिषदों से प्रेरणा पाकर अपने चिन्तन का विकास किया गया है।

विष्व साहित्य के अक्षय भण्डार अष्टादष पुराण अद्वितीय एवं सर्वोत्कृष्ट अष्टादष रत्न है। ये हमारे सामाजिक सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक और दार्षनिक जीवन को स्वच्छ दर्पण के समान प्रतिबिम्बित करते है। पुराणों को भारतीय संस्कृति का मेरूदण्ड कहा गया हैं व्यास के अनमोल दो वचन पुराणों में निहित समाज कल्याण की अवधारणा को स्पष्ट कर देते है, ''अष्टादषपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्। परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।''

वास्तव में यदि मानव कल्याण की बात करनी है तो समस्त मानवों को एक हो जाना चाहिए। इसके लिए किसी अलग नियम कानून की आवष्यकता नहीं अपितु पुराणों में निहित मानव–धर्म ही संसार के समाज को एकीकृत कर सकता है। इस प्रसंग में वामनपुराण का यह श्लोक अवष्य अनुसरण करने योग्य है, ''अहिंसा, सत्यमस्तेंय दानं क्षान्तिर्दमः शमः। अकार्पण्यं च शौचं न तपष्च रजनीचर।''[12] इन सभी धर्मों का पालन मानव के स्वकल्याण के लिए

आवष्यक है। भागवत् पुराण में समस्त संसार के लिए मंगल कामना इस प्रकार की गयी है, ''स्वस्त्यस्तु विष्वस्य खलः प्रसीदतां, ध्यायन्तु भूतानि षिवं मिथो धिया। मनष्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेष्यतां नो मतिरत्यहैतुकी।।''[13] अर्थात् विष्व का कल्याण हो, दुष्टों की बृद्धि शुद्ध हो, सब प्राणियों में परस्पर सद्भावना हो, सभी एक दूसरे का हित चिन्तन करें, हमारा मन शुभ मार्ग में प्रवृत्त हो और हम सब की बृद्धि निष्काम भाव से भगवान श्रीहरि में प्रवेष करें।

इस प्रकार पुराणों में समाज कल्याण की अवधारणा स्फुट रूप से दृष्टिगोचर होती है। 'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मषास्त्रं तु वै स्मृतिः।।[14] इस शास्त्र वचन से सिद्ध होता है कि स्मृति ग्रंथ ही हमारे धर्मषास्त्र है। धर्म सदैव समाज कल्याण में अहम् भूमिका निभाता है स्मृतियोंमें मनुस्मृति समाज–कल्याण की बात बार–बार करती है। समाज में रहने वाले प्रत्येक मनुष्य जब परम्पर एक दूसरे का कल्याण नहीं सोचेगा, तब सही मायने में समाज कल्याण असम्भव है। मनुस्मृति कहती है, ''एवं यः सर्वभूतेषू पष्चत्यात्मानमात्मना। स सर्वसमातामेत्य ब्रह्मभ्येति परं पदम्।।''[15] अर्थात् जो सब जीवों में व्याप्त परमात्मा को आत्मा–स्वरूप से देखता है। यह समबुद्धि प्राप्त कर ब्रह्मरूप मोक्ष को प्राप्त होता है

इस प्रकार स्मृतियों में समाज कल्याण की भावना को प्रतिपादित कर, उसे सार्वभौमिक रूप दिया गया है। संस्कृत साहित्य में रामायण को आदिकाव्य के रूप में निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है। रामायण में ही हमें यह काव्यधारा मिलती है जो आगे चलकर भास, कालिदास, अष्वघोष, भारवि तथा माघ आदि विभिन्न स्रोतों में विभक्त होकर संस्कृत काव्य–कानन को चिरकाल में सींचती चली आ रही है।

रामायण में जिन आदर्षों को विभिन्न पात्रों के माध्यम से उपस्थित किया गया है, वे मनुष्य मात्र के लिए उपादेय ही नहीं अवष्य अनुष्ठेय भी है। बाल्मीकि के द्वारा अनेकषः समाज–कल्याण की बात की गयी है, ''अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः। अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम्।''[16]

जिनको पुत्र नहीं है, उन्हें पुत्र हो और जिन्हें पुत्र हो गया है उन्हें पौत्र हो, जो निर्धन हैं वे धनवान हो जायें और सब लोग शतायु हों अर्थात् सौ वर्ष तक जीयें। रामायण में मनुष्य के लिए महान् आदर्ष रखा गया है, श्रीराम की विषेषताओं के ये श्लोक उसे और स्पष्ट कर देते है, ''धर्मज्ञः सत्यसन्धष्च प्रजानां च हिते रतः। यषस्वी ज्ञानसम्पनः शुचिर्वष्यः समाधिमान्।। प्रजापति समः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः। रक्षिता स्वस्य धर्मस्य परिरक्षिता।।''[17]

श्रीराम मूर्तिमान धर्म हैं 'विग्रहवान् धर्मः'[18] उनके रूप में मानो धर्म ने ही विग्रह धारण कर लिया है। मातृदेवो भव, पित्देवों भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव का अक्षरषः पालन करते हुए समाज कल्याण के लिए संकल्पित रहे। महाभारत को ज्ञान का सागर कहना अतिष्योक्ति नहीं होगी। वस्तुतः रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति को समझने के लिए दो विमल चक्षुओं के समान हैं, जिनसे जीवन की नाना समस्याओं का अन्तर्पट प्रकट हो जात है। महाभारत संकीर्णता तथा विषमता से ऊपर उठकर केवल मानवता, शान्ति तथा विष्वबन्धुत्व की बातें करता है, ''यो दुःखी देखकर दुःखी होता है, वही यथार्य धर्म को समझता है।

समाज–कल्याण के लिए व्यक्ति को स्वतः के कल्याण के साथ दूसरे का कल्याण भी करना चाहिए तभी समाज का कल्याण सम्भव है। महाभारत में इस बिन्दु पर विषेष प्रकाष डाला गया है।

भगवद्गीता ने केवल भारत में अपितु विष्व में भी सर्वाधिक लोकप्रिय धार्मिक ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित है। गीता दर्षन व्यावहारिक दर्षन है। अतएव गीता के समान गंभीर परन्तु सरल हृदया तथा मस्तिष्क पर समान प्रभाव डालने वाली, चित्त को प्रफुल्लित करने वाला, आत्मा को शान्ति देने वाला दूसरा कोई ग्रंथ संस्कृत साहित्य में क्या समस्त संसार में साहित्य में दुर्लभ है। गीता समाज–कल्याण के प्रति अति सचेष्ट है। गीता का यह उद्घोष है कि सभी प्राणी कर्मयोगी बने, सभी परस्पर मैत्रीभाव से रहते हुए विष्व शान्ति हेतु प्रयास करें, ''यदा भूत पृथक्भावमेकस्थमनुपष्यति तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।''[20]

जिस क्षण यह पुरूष भूतों के पृथक्–पृथक् भाव को एक परमात्मा में स्थित तथा उस परमात्मा से सम्पूर्ण भूतों का विस्तार लिखता है उसी क्षण वह सच्चिदानन्द स्वरूप परम ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार गीता समत्व भाव से समाज कल्याण की पहल करती है।

उपर्युक्त आर्षग्रंथो में प्रतिपादित समाज कल्याएण की अवधारणा को परवर्ती कवियों ने विस्तार प्रदान किया। संस्कृत साहित्य के प्रत्येक कवि के काव्य–प्रणयन का प्रयोजन समाज–कल्याण ही हुआ करता है। महाकवि कालिदास ने 'रघुवंषम्' महाकाव्य में समाज कल्याण पर विषेष प्रकाष डाला है। महाकवि कालिदास के वर्णन में राजाओं का जीवन परोपकार तथा समाजकल्याण की एक दीर्घ परम्परा रहा है। कालिदास ने महाराज अज के वर्णन में कहा है कि उनका धन ही केवल दूसरे के उपकार के लिए नहीं था, प्रत्युत उनके समस्त सद्रुण दूसरों का कल्याण सम्पादन करते थे, उनका बल पीड़ितो के भय तथा दुखः का निवारण करता था और उसका शास्वाध्ययन विद्वानों के सत्कार एवं आदर में प्रयुक्त होता था, ''बलमार्तभ योपषान्तये विदुषां सत्कृतये बहुश्रुतम। वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना।''[21]

इस प्रकार अन्य कवि भी समाज–कल्याण के प्रति सचेष्ट दिखते हैं, नैषधकार श्रीहर्ष के काव्य का उद्देष्य ही अपनी कविता द्वारा विष्व को एकीकृत करना है। राजा नल प्रजापालक तथा सहज रूप से मानव कल्याण के प्रति संकल्पित थे, –निपीय यस्य षिक्षिरक्षिणः कथाम्।'[22] अष्वघोष द्वारा रचित 'बुद्धचरितम् में समाज–कल्याण की अवधारणा पग–पग पर दृष्टिगोचर होती है। बौद्ध धर्म की षिक्षाओं का उद्देष्य विष्व कल्याण एवं विष्व शांति ही थी, ''लोकस्य मोक्षाय गुरौ प्रसूते, ष्षमं प्रपेदे जगदव्यवस्थम्। प्राप्पेव नाथं खलु नीतिमन्तं, एको न मारो मुदमाप लोके।।''[23] अर्थात् संसार के कल्याणार्थ गुरू के उत्पन्न होने पर अव्यवस्थित जगत् मानो नीतिज्ञ शासक को प्राप्त करके शान्ति को स्वतः ही प्राप्त हो गया। केवल कामदेव को हर्ष नहीं हुआ।

इस प्रकार समस्त महाकवियों ने समाज कल्याण की अवधारणा को प्रमुखता के साथ प्रतिपादित किया है।

संस्कृत साहित्य में समाज–कल्याण की दृष्टि ने नीतिपरक विशेष ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। मुख्य रूप से तीन ग्रंथ उल्लेख्य हैं, 1. चाणक्यनीति, 2. विदुरनीति एवं 3. नीतिषतकम्। चाणक्य ने समाज–कल्याण की भावना को इस रूप में प्रतिपादित किया है, ''मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्। आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः।।''[24]

नीतिशतकम् मानव मात्र को सफल जीवन जीने, समाज में उन्नति करने और दुनिया में आदर्श स्थापित करने वाला नीतिकाव्य है। इसमें सर्वत्र समाज कल्याण की भावना दृष्टिगोचर होती है, ''निन्दन्तु नीति निपुणाः यदि वा स्तवन्तु/लक्ष्मीः समाविषतु गच्छतु वा यथेष्ठम्/अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा/न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।''[25]

संस्कृत नाटय साहित्य और कथा मे भी समाज–कल्याण की भावना पग–पग पर दृष्टिगोचर होती है। भास ने नाटकों में यह भावना प्रबलतया दृष्टिगोचर होती है, 'सर्वत्र सम्पदः सन्तु नष्यन्तु विषदः सदा। राजा राजगुणोपेतो भूमिमेकः प्रशास्तु नः।।[26]

भास सर्वथा कल्याण की स्थापना के प्रति सचेष्ट है। कालिदास के नाटकों मे मंगलाचरण तथा भरतवाक्य में समाज कल्याण की भावना दृष्टिगोचर होती है। परवर्ती साहित्य में भी समाज कल्याण की भावना सहजतया दिखायी पड़ती है।

इस प्रकार समस्त संस्कृत वाड्.मय का मुख्य प्रतिपाद्य समाज कल्याण ही है। नैतिक मूल्यों की प्रतिस्थापना का श्रेय भी साहित्य को ही है। विधि–निषेध का परिज्ञान भी साहित्य के माध्यम से होता है, तत्पश्चात् ही हम करणीय का आचरण कर पाते है। अतः मानव को मानवोचित आचरण सिखलाने में संस्कृत वाड्.मय का उल्लेख्य अवदान है। प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से इस तथ्य को प्रकाशित करना ही अभीष्ट है।

संदर्भ ग्रंथ

1. पारम्परिक
2. पंचतंत्र, श्लोक संख्या 38
3. अज्गतिक्षेपणयोः।
4. पशुनां समाजः अन्येषां समाजः। अमरकोष मनुध्यवर्ग 42
5. स्माजःरक्षितः सामाजिकान् रक्षति–काशिका वृत्ति 4/4/33
6. मैकाइवर एवं पेज–सोसाइटी, पृष्ठ संख्या 212
7. ऋग्वेद 1.1.1
8. अथर्ववेद 17.17
9. ऋग्वेद 10.191.2
10. ऋग्वेद 1.86.1
11. ईशोपनिषद् 6
12. वामनपुराण 4.1
13. श्रीमद्भगवत् पुराण 2.18.9
14. मनुस्मृति 2.10
15. वही, 12.125
16. बाल्मीकि रामायण
17. बाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 1.12
18. बाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड 37.13
19. महाभारत, शान्तिपर्व 260.20
20. श्रीमद्भगवद्गीता 13.20
21. रघुवंषम् 8.3
22. नैषधीय चरितम् 1.1
23. बुद्ध चरितम् 1.27
24. चाणक्य शतकम् 7
25. नीतिशतकम् 27
26. कर्णभारम् 3